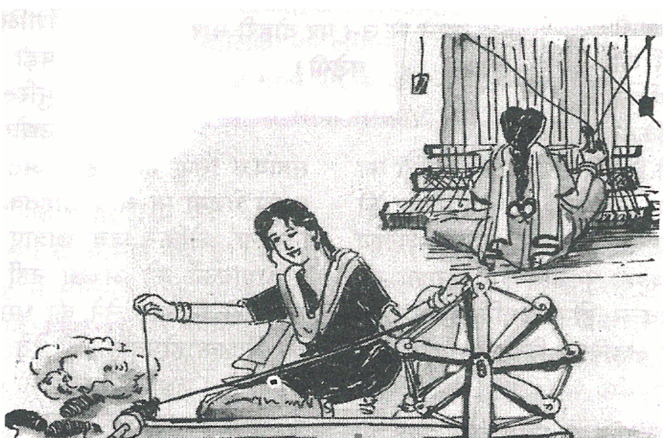
बालिका शिक्षा की दुर्दशा क्यों ?

❑ डा. सौभाग्यवती

भारत में बालिका शिक्षा की दशा को अभी तक 'दुर्दशा' ही कहा जायेगा हालांकि विकास और शिक्षा की विभिन्न योजनाओं में इसके लिए विशेष प्रावधान और प्रलोभन समाहित किये जाते रहे हैं । बालिका शिक्षा का संबंध समाज में स्त्री की हैसियत से भी है - इस तथ्य के मद्दे नजर कुछ समग्र योजनाएं तो बनी हैं लेकिन उनके क्रियान्वयन की समग्रता के प्रति लोगों में असंतोष है । प्रस्तुत टिप्पणी में बालिका शिक्षा के अंधेरे पक्ष को फिर से दोहराने के साथ समस्या के कुछ जटिल बिन्दुओं की ओर भी संकेत किया गया है। तथापि कहीं असहमति की गुंजाइश हो सकती है ।

यह हमारी आजादी का स्वर्णजयन्ती वर्ष है । विगत पचास सालों में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक विकास की विविध राहें हमारे सामने खुली हैं, खुलती जा रही हैं, लेकिन महिला-विकास के तमाम दावों के बाद भी देश में 20 करोड़ से अधिक महिलाएं अभी भी अनपढ़ और अंगूठाटेक बनी हुई हैं । ऐसा नहीं है कि साक्षरता और शिक्षा के प्रति सरकारी प्रयास नहीं किए गए । अधिकतम राज्यों में चौदह वर्ष तक की बालिकाओं को नि:शुल्क शिक्षा देने का प्रावधान है । विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में भी समय-समय पर स्त्री शिक्षा को महत्वपूर्ण मुद्दा माना गया । अब सवाल यह है कि सशक्त कानून बन जाने व निरन्तर शिक्षा के प्रयासों के चलते देश की आधी आबादी का विकास अवरुद्ध क्यों है ?



अधिकतर लोगों को यह खुशफहमी है कि 'साक्षरता योजना' 'सबके लिए शिक्षा' 'अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा' जैसे उपक्रमों से निश्चय ही महिला साक्षरता का प्रतिशत बढ़ रहा है, लेकिन आंकड़े कुछ और ही कहानी कहते हैं । 1981 में 1971 के मुकाबले ज्यादा बालिकाएं स्कूल की पढ़ाई बीच में छोड़ गईं । 1971 में 38 प्रतिशत बालिकाओं ने प्राथमिक शिक्षा पूरी की जबकि 1981 में केवल 33 प्रतिशत ने । पढ़ाई छुड़ाने का मुख्य कारण लड़की को घर के काम काज में लगाना रहा । दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि हजारों सालों से पितृप्रधान हमारे परम्परावादी भारतीय समाज में लिंगभेद का दबाव सर्वत्र लड़की को ही झेलना पड़ता है । बेटा वंश चालक होता है, जबकि बेटी पराये घर का धन होती है, अत: बेटी का पढ़ाना समय और धन की बर्बादी मानी जाती है। इसी मानसिकता के कारण 1971 में चौदह वर्ष तक की उम्र के 6.66 प्रतिशत लड़के काम में लगे हुए थे जबकि लड़कियां 2.63 थीं । 1981 में लड़के घट कर 5.46 प्रतिशत रह गये जबकि लड़कियां बढ़कर 3 प्रतिशत हो गईं । ये आंकड़े महिला एवं बालिका विकास विभाग के हैं । 1996 के शासकीय आंकड़ों के मुताबिक 68.8 प्रतिशत पुरुष साक्षरता के मुकाबले महिला साक्षरता 36.4 प्रतिशत है । किसी भी प्रबुद्ध समाज के लिए यह असमानता शोचनीय है ।

यदि 1988 की ग्यारहवीं विश्व विकास रिपोर्ट का अवलोकन करें तो हमें आश्चर्य चकित होना पड़ेगा । उसके अनुसार भारत ने शिक्षा के क्षेत्र में सफल शुरुआत की लेकिन बाद में कई अफ्रीकी और एशियाई देशों ने स्त्रीशिक्षा में उसे पछाड़ दिया । 1965 में हमारे देश में 57 प्रतिशत लड़कियां प्राथमिक स्कूलों में शिक्षा पा रही थीं और 1985 में शिक्षा का यह प्रतिशत 75 तक पहुंच गया लेकिन इस अवधि में हमसे काफी पीछे चल रहे देश जांबिया, तंजानिया, इंडोनेशिया, पड़ौसी चीन और श्री लंका तक हमसे आगे निकल गए। उनके यहां 90 प्रतिशत लड़कियों को प्राथमिक शिक्षा प्राप्त हो रही थी । इसी तरह माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में भी अन्य देश हमसे आगे निकल गए ।

यदि योजना निर्माताओं ने इस स्थिति को गंभीरता से नहीं लिया तो अब तक के सभी प्रयत्न निरर्थक होंगे। क्योंकि बालिकाओं की पढ़ाई छुड़ाने के कारण गिनाते समय इस तथ्य को प्राय: छिपाया जाता है कि सात आठ साल की उम्र में ही लड़की को बाल श्रमिक बना दिया जाता है । घर से बाहर और घर के भीतर उन्हें परिश्रम के लिए मजबूर किया जाता है । इस स्थिति के पक्ष में गरीबी का जो तर्क दिया जाता है, वह यद्यपि न्याय संगत है । लेकिन यह भी सही है कि लड़की को पढ़ाना लिखाना अनावश्यक माना जाता है । ग्रामीण क्षेत्रों और नगर के मलिन क्षेत्रों में भी यही स्थिति पाई जाती है । बेटे को शिक्षा दिलाना इसलिए जरूरी होता है कि वह मां-बाप के निमित्त कमाऊपूत सिद्ध हो सकेगा ।

अनिवार्य शिक्षा का कानून एक गंभीर प्रश्न पैदा करता है और इसे व्यवहार में लाना प्रत्यक्ष रूप से आसान नहीं है । समाज या प्रशासन को इस पर दूसरी तरह से सोचना होगा, मां बाप पर सख्ती करने से समस्या और उलझेगी । ऐसे हालात बनाने होंगे कि मां-बाप बच्चों को स्कूल भेजने में असुविधा महसूस न करें। अन्यथा मां-बाप को सीधे सीधे दंड़ित करने से उन पर दोहरी मार पड़ेगी।

ज्ञातव्य है कि अनुसूचित जाति समूहों में महिलाओं को और भी हीन समझा जाता है, इसलिए वहां बालिका शिक्षा की स्थिति अत्यधिक चिन्ताजनक है । आठवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान अनुसूचित जाति विकास और कल्याणकारी ग्रुप का विचार था कि विद्यालय छोड़नेवाली छात्राओं की भारी संख्या के कारण संवैधानिक उद्देश्यों की प्राप्ति लगभग असंभव ही है 14 वर्ष की आयु तक विद्यालय आने वाली लड़कियों की संख्या में तेजी से कमी हो जाती है। शिक्षा की इस बर्बादी का कारण है, सामाजिक दुर्बलता, निरंतर निर्धनता, पौष्टिक भोजन की कमी, अस्वास्थ्यकर वातावरण, अपर्याप्त निवास, निरन्तर शोषण और भावी असफलताओं की आशंका । जीवन में निराशा की भावना और शिक्षा के प्रति लगाव न होना आदि नकारात्मक समस्याओं के कारण विशेष रूप से लड़कियां विद्यालय छोड़ देती हैं।

लड़कियों के सन्दर्भ में इस स्थिति का मुख्य कारण यह भी है कि उक्त जाति वर्गों में लड़कियों की शिक्षा को महत्व नहीं दिया जाता । पुरुष अध्यापकों से पढ़ना, किशोर अवस्था में लड़कों के साथ पढ़ना, और नाबालिग उम्र में शादी होना आदि ऐसे कारण हैं जिनको अभिभावक अपनी तरह से देखते हैं, जैसे छोटी आयु की लड़की की शादी होने से पूर्व ही उसे स्कूल से इसलिए निकाल लिया जाता है कि जिससे लड़की या उसके परिवार की बदनामी न हो । यही कारण है कि 60 प्रतिशत छात्राओं ने कक्षा 5 से पूर्व एवं 75 प्रतिशत ने कक्षा आठ से पूर्व पढ़ाई छोड़ दी । यह स्थिति विद्यालय की शिक्षा प्रणाली को प्रतिक्रियात्मक बनाने जैसी है । बिहार, हरियाणा, मध्यप्रदेश, राजस्थान, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में यही स्थिति है ।

ऐसा देखा गया है कि जहां कहीं पिछड़े क्षेत्रों में सामाजीकरण प्रक्रिया शुरु की जाती है वहां स्त्रियों को केवल जिम्मेदारियां ही ज्यादा वहन करनी पड़ती हैं । किसी भी गरीबी प्रधान गांव में लड़कियों को सुबह से शाम तक काम ही काम रहता है । वहां लड़की को स्कूल भेजने का अर्थ है घरेलू काम का नुकसान । दिव्या नायर ने उत्तर प्रदेश के कुछ अति पिछड़े गांवों के सर्वेक्षण में देखा कि अभावग्रस्त माहौल में लड़कियों का जीवन अत्यन्त नीरस और उबाऊ दशा में बीतता है । उत्तर प्रदेश के बारावांकी जनपद (राजधानी लखनऊ से कुछ ही दूर है) के दारहरा गांव के सर्वेक्षण से पता लगा कि यूनीसेफ की सहायता से वहां जो बालिकाओं का प्राइमरी स्कूल चलाया जा रहा है उसमें भेजने के लिए शिक्षिकाओं को बेहद जद्दोजहद करनी पड़ी । असल में इस गांव में जो कि मुस्लिम बाहुल है, घर घर हथकरघा उद्योग चलता है । लड़कियां इसमें विशेष सहायक सिद्ध होती हैं , अत: आर्थिक नुकसान झेलकर उनको स्कूल भेजना मां-बाप अहितकर मानते हैं। किसी तरह स्कूल चल निकला, लेकिन जब छात्राएं स्कूल से बाहर खेलने लगीं तो अभिभावकों को अच्छा नहीं लगा और उन्होंने लड़कियों को स्कूल से निकाल लेने की धमकी दी । उन तथाकथित छात्राओं को शिक्षक होमवर्क नहीं देते क्योंकि उससे हाथ करघे का काम रुकता है । जबकि लड़कों को घर पर पढ़ने लिखने की पूरी सुविधा दी जाती है। स्कूल जाने वाली छात्राओं से जब उनके अनुभव पूछे गए तो उन्होंने बताया कि स्कूल जाना उनको बहुत अच्छा लगता है । कम से कम चार पांच घंटे वे घरेलू काम से छुट्टी पा जाती हैं । अपनी हम उम्र की लड़कियों से मिलजुलकर उन्हें लगता है कि कुछ समय उनका अपना है जिसमें वे परस्पर संवेदना बांट सकती हैं।

असल में शिक्षा का मुद्दा आर्थिक पहलू से जुड़ा होने के कारण बालिका शिक्षा का महत्वाकांक्षी लक्ष्य हासिल नहीं हो पा

रहा है । आज भी उत्तर प्रदेश जैसे वृहद राज्य में अनेक ऐसे गांव हैं जिनमें एक भी लड़की पढ़ना लिखना नहीं जानती । इस प्रदेश के पूर्वांचल में अनेक गांवों में स्त्रीपुरुष की लिंग-दर में बहुत अन्तर पाया जाता है । प्रति 1000 पुरुष पर 830 स्त्रियां इसका एक उदाहरण हैं, ऐसी स्त्रियां या बालिकाएं भला कैसे हीनभावना से ऊबर सकती हैं ? उनमें कैसे स्वाभिमान का भाव जाग सकता है? जब बिजली, पेयजल, सड़क और स्वास्थ्य-रक्षा आदि की प्राथमिक जरूरतों की पूर्ति ही गत पचास वर्षों में नहीं हो पाई, तब बालिका शिक्षा पर कौन ध्यान दे ?

हमारी विफलता यह रही है कि सामाजिक परिवर्तन और आर्थिक विकास को ध्यान में रखते हुए हमने मानव संसाधनों के विकास को उचित महत्व न देकर मात्र प्राविधिक परिवर्तन पर ध्यान केन्द्रित किया, जिससे गरीबी और बेरोजगारी जैसी समस्याएं दूर नहीं हुई बल्कि बढ़ी हैं। उदाहरण के लिए जनसंख्या नियंत्रण को लिया जा सकता है । इसको हल करने के लिए परिवार नियोजन जरूरी है ओर परिवार नियोजन की सफलता महिला शिक्षा पर निर्भर है। इस पर ध्यान देने से न केवल जनसंख्या नियंत्रण का मुद्दा हल होगा, अपितु गुणवत्ता की दृष्टि से भी श्रेष्ठ जनसंख्या का निर्माण होगा ।

मध्यम वर्ग एक सुविधा भोगी वर्ग है जो निम्न वर्ग को जागरूक बनाने में काफी मदद कर सकता है, लेकिन स्थिति इसके विपरीत है । निम्न वर्ग के बच्चों को शिक्षा के प्रति प्रोत्साहन देने के बजाय वह निरूत्साहपूर्ण रोल अपनाता है । अपने घरेलू कामों में औरत की अपेक्षा यदि समझदार बालिका को लगाना संभव हो तो मध्य वर्ग के लोग इसे सस्ता सौदा समझते हैं ।

अनिवार्य शिक्षा का कानून एक गंभीर प्रश्न पैदा करता है और इसे व्यवहार में लाना प्रत्यक्ष रूप से आसान नहीं है । समाज या प्रशासन को इस पर दूसरी तरह से सोचना होगा, मां बाप पर सख्ती करने से समस्या और उलझेगी । ऐसे हालात बनाने होंगे कि मां-बाप बच्चों को स्कूल भेजने में असुविधा महसूस न करें । अन्यथा मां-बाप को सीधे सीधे दंड़ित करने से उन पर दोहरी मार पड़ेगी । स्कूल, स्कूल का माहौल और अध्यापक उच्च स्तर के होने चाहियें और इस स्थिति में ही शिक्षा की अनिवार्यता उपयोगी सिद्ध हो सकेगी । अन्यथा आपातकाल में परिवार नियोजन को सफल बनाने के लिए जिस तरह नससबन्दी अनिवार्य कर दी गई थी और उसके दुष्प्रभाव से कार्यक्रम जिस तरह विफल हुआ, शिक्षा का भी यही हाल हो जाएगा ।

कभी कभी स्कूल दूर होते हैं, स्कूल होता है तो अध्यापक पढ़ाने नहीं आते । शिक्षा पर खर्च करने की स्थिति में मां बाप नहीं होते । बच्चे को स्कूल भेज देने से आमदनी घट जाती है, गरीबी बढ़ जाती है । इस तरह विभिन्न सुविधाओं की कमी के होते हुए मां-बाप कैसे अपनी लड़कियों को खासतौर से स्कूल भेजें, जो कि घर का सहारा होती है । कहीं ऐसा भी होता है कि छोटी जाति की बालिका को हैडमास्टर जी दाखिल करने में आनाकानी करते है क्योंकि वैधानिक रूप से वे किसी को दाखिल होने से रोक नहीं सकते । कहीं ऐसा भी होता है कि छोटी जाति के अभिभावक कुंठा के कारण ऊंची जाति वालों के बच्चों के साथ अपनी सन्तान को नहीं पढ़ाना चाहते।

मध्यम वर्ग एक सुविधा भोगी वर्ग है जो निम्न वर्ग को जागरूक बनाने में काफी मदद कर सकता है, लेकिन स्थिति इसके विपरीत है । निम्न वर्ग के बच्चों को शिक्षा के प्रति प्रोत्साहन देने के बजाय वह निरूत्साहपूर्ण रोल अपनाता है । अपने घरेलू कामों में औरत की अपेक्षा यदि समझदार बालिका को लगाना संभव हो तो मध्य वर्ग के लोग इसे सस्ता सौदा समझते हैं ।

मान्यताओं को बदल देने मात्र से भी समस्या हल नहीं होगी, हां, यह एक प्रमुख कदम जरूर हो सकता है । कारण यह है कि गरीबी का स्वर और स्थिति अलग अलग परिवारों में अलग अलग होती है । कुछ परिवारों में सघन गरीबी है और उनकी स्थिति बेहद शोचनीय है । कहीं मां-बाप में से एक ही जीवित है तो कहीं एक विकलांग या रोगी है, ऐसी स्थिति में बेटी यदि घर चलाने में सहायक बनती है तो उसे हम पढ़ने-लिखने को विवश नहीं कर सकते । कहीं कहीं गरीबी से पीड़ित विधवा मां अकेली अपनी बेटी के साथ रहकर और फुटकर काम करके जीवन-यापन करती है, ऐसे में वह पेट पूर्ति को अहम मानती है न कि बच्ची की पढ़ाई को । तात्पर्य स्पष्ट है कि गत पचास वर्षों में गरीबी की खौफनाक स्थिति के कारण शिक्षा के क्षेत्र में और खासतौर से गरीब और अति गरीब समूहों के प्रति कुछ करने में हम भयानक रूप से असफल रहे हैं । अभी भी उज्ज्वल भविष्य के सृजन की दिशा में कारगर और ईमानदार इच्छाशक्ति के साथ सामूहिक और सरकारी प्रयत्नों से बहुत कुछ किया जा सकता है ।

सर्वप्रथम शिक्षा के विषय को संविधान की 45 वीं धारा से

हटाकर उसे संविधान भाग 3 के अन्तर्गत मूलभूत अधिकारों में रखना होगा। इसके साथ ही शिक्षा के मदवाली धनराशि का 50 प्रतिशत पूर्व प्राइमरी एवं प्राईमरी शिक्षा के निमित्त सुरक्षित रखना होगा । प्राथमिक शिक्षा के हेतु पंचवर्षीय योजना में अलग से एक दस्तावेज जोड़कर भविष्य के लिए पारदर्शी योजना को अमल में लाने से भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हो सकता है ।

प्राथमिक शिक्षा ही ऐसी प्रथम रणनीति है जिसकी व्यावहारिकता से बालिका का दर्जा उठाया जा सकता है, साथ ही बाल-श्रम को भी रोका जा सकता है । प्राथमिक शिक्षा की पांच वर्ष की अवधि समयबद्ध उपक्रम के अन्तर्गत अनिवार्य रूप से निर्धारित की जानी चाहिये । इस क्षेत्र में यूनिसेफ, यूनेस्को, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन आदि हमारी मदद कर सकते हैं जो यत्र-तत्र सहयोग भी कर रहे हैं । अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के संदेश को घर-घर तक पहुंचाने के लिए स्थानीय व्यवसायी समूहों, बुद्धिजीवियों, कलाकारों, ट्रेड यूनियनों तथा महिला संगठनों को सहभागिता के साथ काम करना चाहिए ।



वर्तमान में सूचना क्रांति का दौर है । दुनियाभर के क्रिया-कलाप और तकनीकी गतिविधियां इसी से प्रभावित हैं । हमें सूचना मंत्रालय के सहयोग से एवं स्थानीय पंचायतों के माध्यम से नुक्कड़ नाटक, एक पात्रीय अभिनय, सामाजिक व शिक्षा संबंधी फिल्मी आयोजनों का गांवों और पिछड़े इलाकों में प्रदर्शन करना चाहिए। इस तरह के शिक्षाप्रद रोचक कार्यक्रमों को जनता बहुत पसन्द करती है । जरूरी है कि इस तरह के प्रयासों में निरन्तरता बनी रहे और इन्हें लक्ष्योन्मुखी बनाया जाए । दूरदर्शन समूहगत क्षेत्र में शिक्षा और संस्कृति संबंधी कार्यक्रम प्रस्तुत करके बहुत बड़ी भूमिका निभा सकता है । वर्तमान में हिंसात्मक, यौन विषयक और जादू-चमत्कार वाले जो सीरियल दिखाए जा रहे हैं उनकी जगह कुछ गुणात्मक सीरियल सामने आने चाहिए ।

यह विशेष रूप से याद रखने की बात है कि केरल और लंका में विभिन्न संगठन अभिभावकों को लड़की को स्कूल भेजने को प्रेरित करते हैं । ओर जहां कहीं भी सामूहिक साक्षरता कार्यक्रम सफल हुए हैं, वहां प्राइमरी शिक्षा को अनिवार्य बनाया गया है । केरल में साक्षरता का प्रतिशत 93 से ऊपर है । तमिलनाडु ने बच्चों को स्कूल में भोजन देने का कार्यक्रम रखा जिसके कारण साक्षरता दर में संतोषजनक वृद्धि हुई । स्कूली शिक्षा को अनिवार्य बनाने की जो घोषणा हमारे वर्तमान शिक्षा मंत्री जी ने की है, उसका यथार्थ कहीं दिखाई भी देना चाहिए । घोषणा से आगे प्रत्यक्ष धरातल पर बहुत कुछ करना होगा । स्कूलिंग का स्वरूप कैसा हो ? अमल का तरीका कैसे रचनात्मक बनाया जाए ? ये प्रश्न, उत्तर मांगते हैं । सरकार और निजी संस्थाओं के बीच एकजुटता कायम करना नितान्त जरूरी है । मानव विकास की एशियाई रिपोर्ट बताती है कि भारत में निरक्षरों की संख्या कनाडा और जापान की कुल आबादी के बराबर है । इस तल्ख सचाई को ध्यान में रखते हुए हमें हर वर्ग, हर धर्म, हर जाति व हर क्षेत्र के सभी बच्चों के लिए अच्छी शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी । जो कुछ संविधान में अंकित हैं उस पर ईमानदारी से अमल होना चाहिये । समाजवाद का मूल सिद्धांत है समग्र विकास अर्थात हर एक के लिए समान विकास का अवसर, यही हमारा लक्ष्य होना चाहिये । यह काम मानवीय संवेदनशील लोग ही कर सकते हैं भ्रष्ट व धूर्तजन नहीं । ◆